रद्दी के ढेर में साहित्य की खोज : रमेशचंद्र शाह

डॉ. अनुपमा तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी
अलायंस विश्वविद्यालय,बंगलूरू
कर्नाटक, भारत
ईमेल – anupama.tiwari@alliance.edu.in
मो. 8886995593/ 8142623426

(अँग्रेजी के प्रोफेसर और हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार रमेशचन्द्र शाह जी उन विरले साहित्यकारों में अग्रणी हैं जो अपनी मिट्टी, लोक की खुशबू तथा हिन्दुस्तानी अनुभव को अपने दृष्टिकोण से देखने – परखने व गुनने में सिद्धहस्त हैं। अद्भुत जिज्ञासा के साथ आप प्रत्येक विधा में नये प्रयोग करने के अभ्यस्त हैं जिसका प्रतिफल यह है कि हिन्दी की एक भी विधा ऐसी नहीं जहां आपकी कलम न चली हो। भारतीय संस्कृति को अपने भाव और परिवेश में उतार कर उसकी महत्ता को नई पीढ़ी के समक्ष रखना ही आपके लेखन की सार्थकता है। प्रस्तुत है लेखक से बातचीत के कुछ अंश –)

अनुपमा : रमेश चंद्र शाह ने हिंदी साहित्य के प्रत्येक विधा पर अपनी कलम चलाई है, परंतु यह जिज्ञासा है कि आपकी प्रिय विधा कौन सी है और क्यों ?

रमेश चंद्र शाह : थोड़ा कठिन है, इस प्रश्न का जवाब देना, क्योंकि मैंने जो आरंभ किया वह कविता से ही किया। आज भी मैं कविता लिख रहा हूं। तो यह कह सकते हैं कि कविता सबसे लंबे अर्से तक मेरे साथ रही है,किंतु बचपन से ही कविता लिखने के साथ-साथ कहानी लिखने की प्रेरणा भी बहुत जल्दी जाग उठी थी। इसलिए क्योंकि, मेरा जो क्षेत्र था अल्मोड़ा, उसमें दोनों ही आयाम समान रूप से आकर्षक, समान रूप से प्रेरणा देने वाले, उत्तेजना देने वाले थे। एक तो प्रकृति का वैभव। अपने छत पर से या घर की खिड़कियों से ही मैं पहाड़ों को देखता सौंदर्य में तल्लीन हो जाता, फिर एक जिज्ञासा और विस्मय कोतूहल मन में उठता, और भीतर के भावों को शब्दों में उद्वेलित होने के लिए प्रेरित करता। दूसरी बात यह थी कि अपने परिवेश में मैं साधारण लोगों को देखता। उनके झगड़े, उनके प्रेम, झगड़े के कुछ समय बाद ही आपस में फिर मिल जाना। कोई भी समस्या आने पर या प्राकृतिक आपदा के समय में भी सब एकजुट हो जाते थे। तो यह जो मानवीय रंगमंच है, हमारे आंख और कान हमारे हृदय को उतना ही उत्तेजित करता था जितना कि मानवीय परक प्रकृति। अतः यह दोनों ही विधाएं मेरे बहुत करीब हैं। एक मजेदार बात यह भी है कि मेरे पिताजी पढ़े लिखे नहीं थे। रद्दी सामान बेचने का हमारा कारोबार था। रद्दी के ढेर में बहुमूल्य पुस्तकें प्राप्त हुईं और मैं उन्हें सहेजता गया और आखिर उनकी प्रेरणा से कुछ कर पाया। रद्दी के ढेर में मैंने साहित्य को परखा।

अनुपमा : 'सरल नहीं होती है कविता किसी काल की' क्या आज का समय काव्य संरचना के लिए अनुकूल है ? कवि बनना और अपने भावों से लोगों को प्रभावित करना वर्तमान समय में चुनौतीपूर्ण है ?

रमेश चंद्र शाह : यह तो दुष्कर ही है। क्योंकि इतने डिस्ट्रक्शन हैं, इतने विघ्न हैं ऊपर से मनुष्य को लुभाने वाली इतनी सारी मशीनी चीजें हैं कि ये सब कविता के लिए चुनौतीपूर्ण है। अब देखो जहां जाओ फोन देखते, या कान में हेडफोन लगाकर व्यस्त रहते हैं लोग। कितना बुरा लगता है। सुबह घूमने जा रहे हैं तब भी दो कौड़ी का गाना सुनते आनंद ले रहे होते हैं और अपने बगल में ही खड़े व्यक्ति को आप देखते भी नहीं हैं। मुझे लगता है कि यह समय प्रकृति के गुंजार को समझने और उसमें रम जाने का समय तो नहीं रह गया है। कविता लिखना ही बड़ा कठिन है फिर भी लिखा जा रहा है, क्योंकि यह प्रकृति की मांग है, जो जीवन को जीता है, उससे संतोष नहीं मिलता तब वह जीवन की पुनर्रचना करना चाहता है क्योंकि जैसा जीवन होना चाहिए वैसा तो दिखाई नहीं देता। आज समाज की स्थिति बहुत बदल गई है। संघर्ष बहुत है। कविता की समझ रखने वालों की तथा सही व्याख्याकारों की कमी है। जो थोड़े बहुत भावुक हृदय हैं कम से कम आप कविता की पवित्रता को कलुषित तो नहीं होने दे रहे हैं। आज दौड़ भागी और आपाधापी में जो साहित्य लिखा जा रहा है वह बहुत चीप होता है। सस्ती लोकप्रियता की मांग रखने वाले कविता की कीमत नहीं कर पाएंगे।

अनुपमा : रमेशचंद्र शाह और ' गोबर गणेश' का अटूट नाता है। यह पाठकों के समक्ष 1978 में ही आ गया था। 2014 में आपको साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला, वह भी ' विनायक' के लिए जो कि ' गोबर गणेश' का विस्तार है आपको क्या लगता है ' विनायक', ' गोबर गणेश' या अन्य उपन्यासों से कितना भिन्न है ?

रमेश चंद्र शाह : अनुपमा तुमको एक मजेदार बात बताता हूँ। 'गोबर गणेश' उपन्यास को कई बार साहित्य अकादमी के ज्यूरी में रखा गया था। जो लोग चयन कमेटी में थे, उनमें से एक दो ने मुझे बताया था। उनका नाम मैं नहीं लूंगा, पर घर आकर वे बता गए कि तुम्हारे 'गोबर गणेश' को ही पुरस्कृत के लिए रखा जाता है परंतु दो-दो बार स्थगित हो कर बाहर आ गया। सब चाहते थे, लेकिन भाई एक प्रबल सदस्य थे वे धूमिल पर खड़े हुए थे, और धूमिल को ही वे दिलवाना चाहते थे। उनके ज़िद के समक्ष निर्णय को बदल दिया गया। जिन्होंने मुझे बताया यह उनकी पारदर्शिता थी। पहले तो मुझे इतनी महत्वकांक्षा नहीं थी, परंतु जब मुझे पता चल गया तब मुझे भी थोड़ा सा दुख हुआ। उसके बाद भी दो से तीन बार मेरे उपन्यास ' गोबर गणेश', ' किस्सा गुलाम' आदि को भेजा गया पर टॉप 6 में से उनको छांट दिया गया। हो नहीं पाया और क्यों नहीं हो पाया कहना तो उचित नहीं लगता परंतु जो दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है वह यही है कि साहित्यिक गुटबंदी। हम किसी गुटबंदी में शरीक नहीं हुए शायद यह भी एक वजह हो सकता है कि इतने अंतराल के बाद साहित्य अकादमी से पुरस्कृत किया गया। गुट बनाने वाले लोग ही साहित्य का अहित किए हैं और कर रहे हैं। बुराई संगठित होती हैं और अच्छाई तो सर्वत्र प्रसारित होती रहती है लोगों के मध्य। हमें जब विनायक पर मिला तो लगा कि चलो देर आए दुरुस्त आए परंतु कोई खास प्रसन्नता नहीं हुई। बहुत देरी हो गई थी। जो पुरस्कार 20 वर्ष पहले ही मिल जाना चाहिए था 1978 से 2014 मेरा तो पूरा जीवन ही निकल गया, पत्नी दिवंगत हो गई बिना देखे ही। प्रसन्नता साझा करने वाला साथी ही नहीं रहा। वह एक सच्ची आलोचक थीं।

अनुपमा : 'जंगल में आग' कहानी में पूर्णतः अल्मोड़ा के प्राकृतिक सौंदर्य को हम पाते हैं। प्रकृति के वादियों से निकल कर, 'झीलो के शहर' के सफर में, उत्तराखंड की खूबसूरती की कमी कहीं लगती होगी ?

रमेश चंद्र शाह : हां कमी तो बहुत लगती है। मेरी एक कविता है, कुमाऊनी में 'उका हुलार' इसका अर्थ है उतार चढ़ाव। जिसमें मैंने लिखा है कि मैं सारे संसार में आधी पृथ्वी की परिक्रमा कर चुका हूं। यह सच्ची बात है कि कितना देश - विदेश में घूम चुका हूं और एक से एक सुंदर रम्य स्थान देखें, हर जगह सौंदर्य है, सर्वत्र प्रकृति है, पहाड़ है, झरना है। सब जगह देखा मैंने लेकिन अल्मोड़ा क्षेत्र. उसका चेहरा, अल्मोड़ा जैसी झील, सब जगह मैं अल्मोड़ा का अनुवाद ढूंढता हूं अर्थात उसका सादृश्य ढूंढता हूं। पर कोई भाता नहीं है। एक अनुराग है, लगाव है अपनी जन्मभूमि के प्रति। प्रात: सैर के लिए मैं आठ मील पैदल जाता, जंगलों के बीच, पहाड़ों और झरनों को निहारता उनका आनंद लेता, उनसे सीखता और वापस लौटकर जब बाजार के कोलाहल में आकर बड़े-बड़े आलीशान बंगले देखता तो प्रकृतिक सौंदर्य के समक्ष ये भव्य बंगले मुझे बौने लगते। प्रकृति पारखी बहुत कम लोग हैं। उस सौंदर्य को सब नहीं समझ पाते। बस अपने तंग विचार और संकीर्ण मानसिकता के साथ साहित्य के उत्तुंग शिखर पर बैठना चाहते हैं। आज ऐसे ही लोग प्रकृति के वास्तविक सौंदर्य का भाव गिराते जा रहे हैं।

अनुपमा : वर्तमान समय के युवा लेखक या कवि के रचना से आपका परिचय हो पाया है ? आप क्या समझते हैं कि यह सही दिशा में जा रहे हैं ? नए साहित्यकारों में आप किसे अपना आशीर्वाद देना चाहेंगे ?

रमेश चंद्र शाह हंसते हुए.... तुम तो बड़ी चालू हो। शरारत भरा सवाल पूछ रही हो। अब ऐसा है अनुपमा की हर साहित्यकार को अपना अर्थात हिंदी साहित्य का भविष्य चाहिए। भविष्य तो जो अब नवोदित हैं, लिख रहे हैं, यह उनका है। साहित्यकार की कामना होती है कि, जिन मूल्यों को लेकर, जिस गंभीरता से उसने साहित्य साधना की है, उसमें कोई भी कमी न आवे। और परंपरा में जो श्रेष्ठतम रहा, जो दूसरों ने अर्जित किया है, यह लोग भी कर रहे हैं उस धरोहर को उच्च से उच्चतम तक स्थापित कर रहे हैं । बिना किसी साहित्यिक, या राजनीतिक गुटबंदी में जाए। जो लोग यथार्थ को लेकर लिख रहे हैं मैं 8 से 10 लोगों का नाम गिना सकता हूं। एक रामकुमार हैं। औरों का नाम तो अभी याद नहीं आ रहा है, पर जब लिखते हैं तो तबियत खुश कर देते हैं। बस एक ही कमी है, कि आज के साहित्यकार को बड़ी जल्दी है। वह सब कुछ बहुत जल्दी प्राप्त कर लेना चाहते हैं।

अनुपमा : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हिंदी को विश्व भाषा बनाने की जो होड़ मची है, इसमें हिंदी को अभी कितना सफर करना बाकी है ?

रमेश चंद्रशाह : भई देखो ! तुम अपने देश में, अपने शहर में तो हिंदी की चिंता नहीं कर रहे हो। तुम्हारा बच्चा एक दो कौड़ी के कॉन्वेंट स्कूल में शिक्षा पा रहा है। आपको खुद हिंदी माध्यम वाले स्कूल पर भरोसा नहीं है। और आपको भी क्या दोष दें, हिंदी माध्यम के स्कूल भी बेकार चल रहे हैं। मोटा तनख्वाह लेकर भी जो बच्चों को देना चाहिए आप नहीं दे रहे हैं। आशय यह है कि आप वास्तविकता तो देखिए कि क्या आप अपने ही देश में हिंदी के लिए लोगों को मना पा रहे हैं। किसी भी सेमिनार में या हिंदी कार्यक्रम में अच्छे-अच्छे लोग अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते नहीं अघाते। अर्थात वे अनुवादी भाषा बोलते हैं। चीन के बाद हिंदी तो दूसरी भाषा है ही, बल्कि एक ने तो साबित कर दिया है - नौटियाल ने की चीन से भी ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है हिंदी। ऐसा उन्होंने साबित किया। लेकिन आप देखिए कि स्वयं हिंदी वालों का कलेजा इतना छोटा है कि बस रोब जमाने की खातिर हिन्दी के होकर भी अङ्ग्रेज़ी से चिपके रहते हैं जबकि हिंदी का कलेजा बहुत बड़ा है, सबको गले लगाने वाली प्रवृत्ति हिंदी में है। लेकिन हिंदी वालों का व्यवहार देखिए, उनके हथकंडे देखिए, उनका घटियापन देखिए क्या सचमुच हिंदी के लायक हैं ? एक आवाज कोई हिन्दी के बढ़ावा के लिए उठाए और आप देख लीजिये कि कितने लोग उसका साथ देते हैं ? हिन्दी वालों को हिन्दी पढ़ने – बोलने या लोगों तक पहुँचने की चिंता नहीं है अपितु उन्हें चिंता माइक और मंच की है। दस लोगों के बीच माइक लेकर कुछ भी बोल देने से आप हिन्दी को विश्व भाषा नहीं बना सकते। आज हमें अपने ही मौलिकता की चिंता नहीं है। अपने ही बड़े और श्रेष्ठ लेखकों को हम नहीं पढ़ते हैं। अंग्रेजी किताबों को अपने निजी पुस्तकालय का शो पीस बनाते हैं, फिर आप कहेंगे कि हिंदी विश्व भाषा बननी चाहिए। जब तक शुभारंभ परिवार से होकर राष्ट्र तक नहीं पहुंचेगा, हिंदी की स्थिति सोचनीय बनी रहेगी।

अनुपमा : आजीविका के लिए संघर्षरत नई पीढ़ी को आप क्या संदेश देना चाहेंगे ?

रमेश चंद्र शाह : मैं उनसे कहूंगा कि भैया इस बात को गांठ बांध लीजिए कि साहित्य खाली एक मनोरंजन की विधा नहीं है। साहित्य आपको उठा सकता है। अपने परिस्थिति से मौलिक प्रतिशोध लेना सिखा सकता है। ऐसी प्रेरणा दे सकता है आपको। उसकी शक्ति को समझिए। समझने से मतलब ये है कि कमांड या कैरियर शब्द को पकड़कर अपने को, अपने अस्तित्व को ही गुम कर दिए हैं। अरे भैया आप कौन हो ? आप का वजूद क्या है और क्या बन सकता है ? क्यों जीवित हो जब तक आप स्व की तलाश नहीं कर पाये, आपका कैरियर उठ नहीं पायेगा। अतः अध्ययन और चिंतन को विकसित कीजिए, सफलता उसी में है।